झांसी की अधीश्वरी वीरांगना लक्ष्मीबाई

(आज 18 जून, महारानी लक्ष्मीबाई की पुण्यतिथि पर विशेष रूप से प्रकाशित)

स्वराज्य की रक्षा में अपना सर्वस्व निछावर कर देने वाली महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन की स्मृतियों का स्मरण कर प्रत्येक देशप्रेमियों का मन पुलकित हो उठता है। उनकी जीवनी से हम इस बात की प्रेरणा ग्रहण करते हैं कि यदि स्वराज्य पर कभी आंच आये या उसका गौरव संकट में हो, तो हम अपना सर्वस्वार्पण करके उसकी रक्षा करें। महारानी लक्ष्मीबाई भारतीय इतिहास में उस वीरता और विश्वास की पहचान हैं, जिनका चरित्र पवित्रता और आत्मोत्सर्ग के पुण्यशील विचारों पर अवलम्बित हैं। उन्होंने निर्भयतापूर्वक राज्य का रथ चलाया और युद्ध क्रांति के क्षेत्र में उतरकर यह भी सिद्ध किया कि स्वराज्य के गौरव को बचाना केवल पुरुषों का ही नहीं अपितु स्त्रियों का भी कर्त्तव्य है। मृत्यु के समय उनकी अवस्था २२ वर्ष ७ महीने और २७ दिन की थी। यह अवस्था ऐसी है, जिसमें वह देश की आजादी, उसे स्वतन्त्र कराने और उसके लिए मर-मिटने की भावना से परे हटकर अपने सुख, ऐश्वर्य और मनोविनोद को प्रधानता देकर आराम से अपना जीवनयापन कर सकती थीं। लेकिन उस महान् साम्राज्ञी के सामने देश का वह मानचित्र और वे परिस्थितियां थीं, जिनमें भारतीयों को 'नेटिव' कहकर उनके साथ पशुत्वपूर्ण व्यवहार किया जाता था, उनकी धार्मिक भावनाओं को कुचला जाता था, उन्हें बौद्धिक तथा शारीरिक रूप में हीन व पंगु बनाकर निष्क्रिय और निस्तेज बना दिया जाता था।

वामपंथी इतिहाकारों के अभिमतानुसार सन् १८५७ की जनक्रांति अपने-अपने स्वार्थों की रक्षा का परिणाम था और कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों का तत्कालीन शासन के विरुद्ध षडयन्त्र था। जबकि यदि ऐसा होता तो यह क्रान्ति देशव्यापी न होकर केवल कुछ क्षेत्रों एवं कुछ रियासतों तक ही सीमित रह जाती। लेकिन १८५७ की जनक्रांति में जनता अपनी शक्ति के बल पर मिटने को तैयार हुई और अपनी अखण्ड एकता तथा बल-पौरुष का परिचय अंग्रेजो को दिया। जहां जनता के लिए स्वाभिमान और स्वत्वों का प्रश्न था, वैसा ही उस समय के रजवाड़ों और पूर्व शासकों के सामने भी यही एक भाव था कि उनके साथ मानवीय व्यवहार किया जाए व शासक होने के नाते उनके अधिकारों के प्रति आंखें न मींच ली जाएं।

महारानी लक्ष्मीबाई युद्धशिक्षा में पारंगत, मन से दृढ़ और कर्म से तेजस्वी क्षत्रिया थीं। उनका जन्म काशी के अस्सीघाट मोहल्ले में २१ अक्टूबर, १८३५ को मोरोपंत तांबे के घर हुआ। आरम्भ से ही लक्ष्मीबाई को ऐसा वातावरण मिला, जिसने उन्हें स्वराज्य के प्रति निष्ठावान और उसकी स्वतन्त्रता के लिए निरत होने का लगन लगा दिया। अपने पति राजा गंगाधरराव के जीवनकाल में ही वह अपनी

बुद्धिमत्ता और शासकीय क्षमता का परिचय देती रहती थीं। झांसी राज्य का शासनतन्त्र अंग्रेजों के इशारों पर चल रहा है, यह बात उन्हें जरा भी नहीं भाई। लेकिन उस समय शासनतन्त्र के सम्पर्क में न होने के कारण वह अपनी भावना को पी गईं। उसी समय लार्ड डलहौजी ने समस्त देशी रियासतों को अंग्रेजी शासन में मिलाने का एक षडयन्त्र रचा। पुत्र गोद लेने की प्रचलित प्रथा को भी समाप्त कर दिया। उन्हीं दिनों राजा गंगाधर राव बीमार पड़े। उन्होंने झांसी के उस समय के अंग्रेजी प्रबंधक श्री एलिस को बुलाकर उनके सामने ही एक लड़का गोद लिया तथा श्री एलिस ने शपथबद्ध होकर कहा कि वह रानी और गोद लिए हुए बच्चे पर कभी अंग्रेजी हुकूमत की टेढ़ी दृष्टि नहीं पड़ने देंगे। लेकिन गंगाधर की मृत्यु के पश्चात् एलिस का यह वचन पानी के बुदबुदे की तरह समाप्त हो गया। एलिस ने रानी को दरबार में जाकर सरकारी फरमान सुनाया कि रानी का दत्तक पुत्र अस्वीकार किया गया और वह पांच हजार रुपये माहवार की पेंशन लेकर झांसी अंग्रेजों को सौंप दे।

अंग्रेजों द्वारा यह अपमान और विश्वासघात महारानी के शरीर में विष की तरह बिंध गई। उन्होंने गरजकर कहा- "मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी।"

महारानी की इस घोषणा में उस युग का प्रतिनिधित्व था, जिसमें अन्याय के जाल को बराबर अंग्रेजों द्वारा फैलाया जाता था और जिसके नीचे सर्व साधारण सिसक उठा था। बचपन के संस्कार ने रानी के मन में प्रेरणा दी और उन्होंने शासन की कमान को अपने हाथों में ले लिया। झांसी में जनता द्वारा अंग्रेजों का क़त्लेआम आरम्भ हो गया। हो सकता था कि यदि महारानी का जरा-सा भी संकेत जनता को मिल जाता तो अंग्रेज लोग मौत के घाट उतार दिए जाते। लेकिन महारानी का संघर्ष, उसका विद्रोह और उसका पराक्रम अन्याय के विरुद्ध था। शासन को अपने हाथ में लेने के बाद उन्होंने युद्ध की पूरी योजना तैयार की। उन्होंने दो बातों पर विशेष जोर दिया। एक तो यह कि सेना अनुशासित रहे, और दूसरा यह कि जनता को न्यायपूर्ण हक मिले। एक स्त्री के हाथ में राज्य की शासनसत्ता देखकर आसपास के रजवाड़ों ने एक मजाक-सा समझा।

ओरछा के दीवान नत्थेखा ने ३० हजार का सैन्यबल लेकर झांसी पर हमला कर दिया, लेकिन रानी की तोपों ने उनका भुरकस निकाल दिया। दीवान साहब को जिन्दगी के लाले पड़ गए। अपना सारा गोलाबारूद छोड़कर उन्हें भागना पड़ा। राज्य में उस समय चोर-डाकुओं का भी बड़ा जोर था। महारानी ने साहस का परिचय देते हुए उन परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाया। इस तरह एक निश्चिन्तता और सुरक्षा का भाव झांसी की जनता के मन में बना और वह महारानी के प्रति विश्वास और भावनामयी अवस्था के साथ देखने लगी।

अंग्रेजों ने इस जनक्रांति को गदर कहा और उसे मिटाने के लिए तत्पर हो गए। सर ह्यूरोज, भोपाल और हैदराबाद की मदद लेकर महारानी पर चढ़ दौड़ा। २३ मार्च १८५८ को सर ह्यूरोज ने झांसी पर आक्रमण किया। महारानी ने नीतिपूर्वक अन्न और फसल कटवा दिए थे जिससे कि विरोधियों को अन्न और छाया न मिल सके। लेकिन ग्वालियर से अंग्रेजी सेना को सहायता मिली और ३१ तारीख को झांसी की सैन्यशक्ति क्षीण पड़ने लगी। अपने ही लोगों ने उन्हें धोखा दिया। महारानी ने समझ लिया कि झांसी खाली करनी होगी। वह अपने दत्तक पुत्र को पीठ पर बांधकर कालपी की ओर भाग निकली। अंग्रेजों ने उसका पीछा किया। लेफ्टिनेंट बोकर रानी के बहुत पास तक पहुंच गया था। उसी समय रानी ने एक

भरपूर हाथ तलवार का बोकर पर मारा और वह भूलुंठित हो गया। कालपी में राव साहब पेशवा की सेना में बड़ी अँधेरगर्दी थी। सैनिक अनुशासन का नाम नहीं था। महारानी ने सारी व्यवस्था की। सर ह्यूरोज झांसी से कालपी पर टूट पड़ा। महारानी ने अद्‌भुत प्रतिभा और रण-कौशल का परिचय दिया। लेकिन राव साहब की सेना में आत्मिक बल नहीं था और कालपी अंग्रेजों के सर कर दिया। महारानी और राव साहब अपने विश्वस्त साथियों सहित ग्वालियर की ओर दौड़ पड़े। महारानी ग्वालियर आईं और उन्होंने वहां की जनता को एकसूत्र में बांधा। उन्हें जनता तथा ग्वालियर की सेना का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ।

ग्वालियर का किला महारानी के हाथों में था, लेकिन पेशवा के सैनिक आमोद-प्रमोद की बातें सोचते थे।

राव साहब पेशवा के राज्याभिषेक की बात दोहराई गई, लेकिन रानी तटस्थ रहीं। वह अच्छी तरह से जानती थीं कि अंग्रेज चैन से नहीं बैठने देंगे। वही हुआ भी। ११ जून १८५८ को जनरल रोज की सेनाओं से महारानी की मुठभेड़ हुई, लेकिन वह दिन अनिर्णीत होने के कारण १८ जून को पौ फटते ही लड़ाई शुरू हो गई। महारानी ने रोज की सेना पर दबाव डाला और अन्तिम समय तक अदम्य साहस के साथ अंग्रेजों की विशाल सेना को युद्धभूमि में धूल चटाती रहीं। लेकिन एक गोरे की पिस्तौल की गोली महारानी की जांघ में लगी। रानी ने पास आये हुए अंग्रेजों के तलवार से टुकड़े किये। महारानी ने भरसक यत्न किया कि वह सामने आए हुए नाले को पार कर जाए, लेकिन घोड़ा सहमा और बिदक गया। अंग्रेजों का दबाव बढ़ रहा था। एक और अंग्रेज सामने आया। वह भी महारानी की तलवार से मारा गया। महारानी क्षीण पड़ चलीं और घोड़े से गिर पड़ीं। उनके साथी उन्हें निकटवर्ती बाबा गंगादास की कुटी में ले गए लेकिन उन्होंने स्वराज्य की रक्षा में अपने प्राण त्याग दिए।

प्रत्येक वर्ष १८ जून को हम महारानी लक्ष्मीबाई की पुण्यतिथि मनाते हैं। महारानी आज न होते हुए भी प्रत्येक देशप्रेमियों के हृदय में निर्भीकता और कर्तव्यपरायणता की प्रेरणास्त्रोत बनकर प्रतिष्ठित हैं। वह एक अमरगाथा हैं जिसे आजादी के दीवानों ने आज तक गाया और भविष्य में भी गायेंगे।